ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-10* November- 2020
Innovation The Research Concept

चैतन्य महाप्रभु का श्रीकृष्णानुराग : एक विश्लेषण

Sri Krishna Krishnarauga of Chaitanya Mahaprabhu: An Analysis

Paper Submission: 00/00/2020, Date of Acceptance: 00/00/2020, Date of Publication: 00/00/2020

अंजुलता विश्वकर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
श्री रतीराम महाविद्यालय,
संकेत, बरसाना, मथुरा,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

मध्यकालीन भक्तिआंदोलन में श्रीकृष्ण भक्त कवि व प्रचारकों में श्री चैतन्यदेव सर्वश्रेष्ठ है जिन्होने हरिनाम संकीर्तन द्वारा मानवमात्र को भगवत्प्रेमरूपी सुधा का पान कराया। प्रेमोन्मत्त होकर नीलांचल, दक्षिण, काशी, प्रयाग हरिद्वार वृन्दावन आदि देश के कोने– कोने में हरिनाम महत्ता का प्रचार किया। जातिगत भेदभाव सें ऊपर उठकर समाज को मानवता के सूत्र में पिरोया। सभी को दया, क्षमा, सहिष्णुता का उपदेश दिया। इनकी भक्तिपरक विचारधारा में ज्ञान और कर्म के सबंध में भी संकीर्णता नही है। यदि ज्ञानयोग और कर्मयोग का पालन समुचित रूप से किया जाय तो वे भक्ति की प्राप्ति भी करवा सकते हैं। विशिष्ट बात यह है कि चैतन्यदेव ने वेदान्त के सभी सम्प्रदायों के प्रति एक बहुत ही स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया है। चैतन्यदेव ने धर्म और भक्ति के भावात्मक पक्ष को प्रश्रय दिया न कि विधानात्मक पक्ष को। यही कारण है कि भाष्य आदि की रचना न करने पर भी उन्हें एक बड़े सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना गया। भक्ति को आधार बनाकर इन्होने यद्यपि कोई नई परम्परा नही चलाई फिर भी भाव विह्वलता का जितना पुट चैतन्यदेव ने भक्ति मे मिलाया उतना किसी अन्य ने नही। यों तो सम्पूर्ण भारत ही चैतन्यदेव से प्रभावित है किन्तु पश्चिम बंगाल के जनजीवन तो उनकी विचारधारा के साथ पूर्णतः एकाकार हो गया। चैतन्यदेव निरन्तर राधा भाव में रत होकर श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल रहे और अड़तालिस वर्ष की अल्पायु में, जीवन के अन्तिम क्षण में पुरी में जगन्नाथजी के श्रीविग्रह का आलिंगन कर उसी विग्रह में विलीन हो गयें। उनका सम्पूर्ण जीवन कृष्णानुराग–विरह की मिसाल है।

In the medieval Bhakti movement, Shri Chaitanyadeva is the best among Sri Krishna devotee poets and pracharaks who made Bhagavat prem rupi Sudha to human beings by Harinam Sankirtan. Preaching Harinam importance in every corner of the country like Nilanchal, South, Kashi, Prayag Haridwar Vrindavan etc. Rising above caste discrimination, brought society into the thread of humanity. Preached compassion, forgiveness, tolerance to all. In their devotional ideology, there is no narrowness in relation to knowledge and karma. If knowledge and karma yoga are followed properly, they can also achieve devotion. The special thing is that Chaitanyadeva has adopted a very healthy attitude towards all the sectors of Vedanta. Chaitanyadev promoted the emotional side of religion and devotion and not the legal aspect. This is the reason why he was considered as the originator of a large community even if he did not create commentaries etc. As such, the whole India is influenced by Chaitanyadeva, but the life of West Bengal has become completely united with his ideology. At the last moment of his life, he embraced Jagannathji's Shree Vigraha in Puri and merged in the same Deity. His entire life is an example of Krishnarauraga-Vihara.

मुख्य शब्द : कृष्णानुराग, प्रेमोन्मत्त, प्रेमविरह, प्रेमभक्ति, नाम–संकीर्तन, सात्विकभाव, प्रेमावतार, मुर्च्छित, उद्रेक, राधावतार, दिव्योन्माद, भावविह्वलता।

Krishnanuraga, Premonam, Premaviraha, Premabhakti, Satvikabhav, Premavatar, fainted, Udrek, Radhavatar, Divyonmad, Bhavavihvalata.

प्रस्तावना

आनंद और प्रेम–भक्ति के पर्याय श्रीचैतन्यदेव का विलक्षण व्यक्तित्व लोगों को स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। इनका जन्म नवद्वीप (नादिया) नामक ग्राम में हुआ जिसे अब मायापुर कहा जाता है। इनके पिता पं०

जगन्नाथ मिश्र नैष्ठिक कर्मकाण्डी ब्राम्हण थे तथा माता शची सरल एवं धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। नीम के पेड़ के नीचे जन्म होने के कारण इनका नाम निमाई पड़ा और गौर वर्ण का होने के कारण गौरांग, गौरहरि, गौरसुन्दर के नाम से जाने गये। काले घुंघराले लम्बे–लम्बे केश,तेजस्वी मुख,सुगठित शरीर, बड़ी–बड़ी सुहावनी आंखे, मीठी वाणी और मदं–मदं मुस्कान से वे साक्षात् प्रेमावतार प्रतीत होते थे–

'आनन्दलीलामय विग्रहाय, हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय'।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते।।[1]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में चैतन्य महाप्रभु के श्रीकृष्ण प्रेमोन्मत्त जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही कलिकाल मे ईश्वरप्राप्ति का सबसे सरल व सुगम मार्ग नामसंकीर्तन की महत्ता को प्रतिपादित करने का प्रयास भी किया गया है।

श्रीकृष्णानुराग का उद्रेक

15–16 वर्ष की आयु में चैतन्यदेव का विवाह लक्ष्मीप्रिया से समपन्न हुआ। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने व्याकरण, अलंकार और न्याय में प्रवीणता प्राप्त कर ली और नवद्वीप में ही स्कूल स्थापित कर अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया। इनका स्कूल व्याकरणशास्त्र में सबसे श्रेष्ठ माना जाता था। नवद्वीप में चैतन्यदेव की विद्वत्ता, व्याख्यानपटुता, शास्त्रार्थ प्रवीणता की ख्याति प्रख्यात थी। श्रीकृष्ण प्रेम में रत श्रीईश्वर पुरी से भेंट होने पर इनमें भी श्रीकृष्ण प्रेम धीरे–धीरेप्रस्फुटित–सी होने लगी। जिसे देखकर लोगों के मन में किसी प्रकार का भय या डर नही होता और जो दूसरों से भी किसी प्रकार की शंका नही करता, उनके सामने निर्भीकता के साथ बर्ताव करता है। जिसके लिये प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों ही समान हैं, वह संसारी मनुष्य कभी हो ही नही सकता। वह तो भगवान का अत्यन्त ही प्रिय नित्य शुध्द मुक्तस्वरूप है–

'यस्मान्नोदविजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोंद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः'।।[2]

उपर्युक्त सर्वगुण चैतन्यदेव में विद्यमान थे। चंचल हँसमुख, विनोदी स्वभाव के कारण वे सर्वप्रिय थे। जब हृदय में किसी प्रबल भाव का प्रादुर्भाव होता है तो उसके पूर्व एक प्रकार के अभाव की अनुभूति होने लगती है। मन में विचार आता है कि कहीं चलकर अपनी प्रिय वस्तु को ले आवें। चैतन्यदेव को अब संसारी बातों में अनुराग नही रहा उनकी चपलता अब गम्भीरता में बदल गई है। उनका हृदय किसी विशेष वस्तु के लिये छटपटाता सा दिखाई पड़ता है। इस हेतु वे तीर्थ भ्रमण की इच्छा से गया चले गये। चैतन्यदेव की हृदय कन्दराओं में जो त्रैलोक्य पावन प्रेम–स्रोत उमड़ने वाला था, जिसका सूत्रपात चिरकाल से हो रहा था, उस स्रोत को प्रकट करने का अखण्ड यश जगत् विख्यात गयाधाम को ही प्राप्त को सका। धन्य है वह धरती जिसका संसर्ग किसी महापुरूष की लोकविख्यात घटना के साथ हो सके। वही संसार में पावन तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। जब सर्वप्रथम श्रीईश्वर पुरी जी ने इनके कान में 'गोपीजन बल्लभाय नमः' इस दशाक्षरमंत्र का उपदेश किया तो मंत्र के श्रवणमात्र से ये मूर्च्छित होकर धरा पर गिर पड़े। इस दिन से ही इनके हृहय में श्रीकृष्ण प्रेम स्रोत उमड़ पड़ा। चैतन्यदेव श्रीकृष्ण से निवेदन करते हुए कहते कि हे प्रभु! आपका नाम कीर्तन करते हुए कब मेरे नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहेगी, कब आपका नामोच्चारण मात्र से ही मेरा कण्ठ गद्गद् होकर अवरूद्ध हो जायेगा और मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा–

'नयनं गलदश्रुधारया, वदनं गदगदरूद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा, तव नामगहणे भविष्यति।।'[3]

चैतन्यदेव ने उच्च स्वर में–

'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे–हरे'।
हरे राम, हरे राम, राम–राम, हरे–हरे।।[4]

इस महामंत्र रूपी नाम–संकीर्तन गायकी व नृत्य की अनूठी शैली की शुरूआत की। इस महामंत्र संकीर्तन का अत्यन्त व्यापक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में हैं। वैष्णव इन्हें राधावतार, कृष्णावतार, राधाकृष्णमिलितावतार भी मानते हैं।[4] श्रीकृष्ण विरह में हर क्षण इनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होती रहती'। कभी हँसते कभी दहाड़मारकर रोतें। रातभतर हॉ कृष्ण! मेरे प्यारे! मुझे छोड़कर कहाँ गये। इस प्रकार विरहयुक्त वाक्यों द्वारा रूदन करते रहते–

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या, जातानुरागों द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथों रोदिति रौति गाय–त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।।[5]

इनके जीवन में प्रेम के, जैसे उत्तरोत्तर अद्वितीय भाव प्रकट हुए हैं, वैसे भाव संसार का इतिहास खोजने पर भी किसी प्रकटरूप से उत्पन्न हुए महापुरूष के जीवन में शायद ही मिले। चैतन्य के जीवन के भाव तो भक्तो ने प्रत्यक्ष देखें। उनके समकालीन लेखकों ने यथासाध्य उनका वर्णन करने की चेष्टा भी की हैं। श्री रघुनाथदास गोस्वामी के शब्दों में–

गम्भीरा–भितरे रात्रे नाहि निद्रा–लव,
भित्ते मुख–शिर घषे क्षत हय सब।
तीन द्वारे कपाट प्रभु यायेन बाहिरे,
कभू सिंहद्वारे पड़े, कभू सिंधु नीरे।।[6]

भक्त का तो लक्षण ही यह है कि भगवन्नाम के श्रवणमात्र से ही चन्द्रकान्तमणि के समान उसके दोनों नेत्र बहने लगे। आँसू ही भक्त का आभूषण है, जिस आँख में आँसू नहीं वहाँ श्रीकृष्ण नही। आँसू में ही श्रीकृष्ण छिपे रहते हैं। चैतन्यदेव कहते कि हे गोविंद! आपके विरह में मुझे एक क्षण भी एक युग के बराबर प्रतीत हो रहा है। नेत्रो से मूसलाधार वर्षा के समान निरन्तर अश्रु–प्रवाह हो रहा है तथा समस्त जगत एक शून्य के समान दिख रहा है–

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द विरहेण में।।[7]

चैतन्य श्रीकृष्ण प्रेमानंद में बेसुध नवद्वीय आ गये। सम्पूर्ण नवद्वीप में एक ही चर्चा थी कि निमाई पं० एकदम बदल गये हैं परम भागवत वैष्णव बन गये हैं। इनका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने वाली व अनुपमेय थी। स्कूल में अध्यापन के लिये जाते किंतु श्रीकृष्ण के सिवाय अन्य किसी विषय पर चर्चा ही नही करते। विद्यार्थियों से कहते कि श्रीकृष्ण ही एकमात्र सार हैं वह मधुरातिमधुर है उसी का पान करो इन लौकिक शास्त्रों से क्या अभीष्ट सिद्ध होगा ? अब चैतन्यदेव की विद्या, बुद्धि, वैभव– सम्पदा,

मेधा सभी एकमात्र श्रीकृष्ण कथा ही है। इनका चित्त अब लोक में नही रहा। वह तो कृष्णमय हो। चुका इनकी सभी चेष्टाएँ श्रीकृष्णमय ही होने लगी– तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मर्मिर्यया।[8] उनके अनुसार श्रीकृष्ण कीर्तन ही शाश्वत शांति का एकमात्र उपाय है उसी के द्वारा मनुष्य सभी प्रकार के दुखों से परित्राण पा सकता है। स्कूल में न पढ़ा पाने की विवशता पर वे कहते जब हम पढ़ाने या किसी अन्य काम के करने का प्रयत्न करते है तो श्रीकृष्ण हमारी आँखो के सामने आकर मुरली की विश्वविमोहिनी तान सुनाने लगते है जिससे हमारा चित्त व्याकुल होने लगता है और हमारी सब सुध–सुध भूल जाती है। चैतन्य निरन्तर संकीर्तन करते रहते–

हरे हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन।।[9]

इनके अनुसार सभी को अभिमानरहित, दीन, सहनशील, व सहिष्णु रहना चाहिए। अपने आपको तृण से भी नीचा समझना चाहिये तथा तरू से भी अधिक सहनशील बनना चाहिये। स्वयं तो सदा अमानी ही बने रहना चाहिये किंतु दूसरों को सदा सम्मान प्रदान करतें रहना चाहिये। अपने को ऐसा बना लेने पर ही हम श्रीकृष्ण कीर्तन के अधिकारी बन सकते हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण कीर्तन प्राणियों के लिये सर्वदा कीर्तनीय वस्तु है–

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।[10]

प्रेम की उपमा किससे दे। प्रेम तो एक अनुपमेय वस्तु है। चर–अचर, जड़–जंगम, सजीव–निर्जीव सभी में प्रेम समान रूप से व्याप्त है किन्तु प्रेम की उपलब्धि सर्वत्र नही होती। वह भंक्तो के शरीर में पूर्णरूपेण प्रकट होता है। प्रेम प्रकाश स्वरूप है। प्रेमास्पद के सुख की कामना होना ही प्रेम है। चैतन्यदेव ने प्रेम और काम में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है–

''कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल।
कृष्ण सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल।
लोकधर्म, वेदधर्म देहधर्म, कर्म।
लज्जा, धैर्य, देह सुख, आत्मसुख मर्म।।
सर्वत्याग करये करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेमेर सेवन।
अतएव कामे प्रेमे बहुत अंतर।
काम अन्धतम् प्रेम निर्भल भास्कर''।।[11]

कलयुग में केवल हरिनाम ही सार है, जीवों के उद्धार के निमित्त भगवन्नाम को छोड़कर कलिकाल में दूसरा कोई और सुगम मार्ग है ही नही–

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।[12]

चैतन्यदेव का जीवन प्रेमासाव पान किये हुये उन्मत्त व उन्मुक्त सा हो गया था। उनका आन्तरिक जीवन के साथ ही बाह्य जीवन भी त्यागमय बनता जा रहा था। उनके शरीर में सात्विक भावों (स्वेद, कम्प, अश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य, पुलक एवं प्रणय) का उद्रेक होने लगा था। जो प्रवृत्तिमार्ग में रहते हुये भी पूर्ण भक्त हुये हैं उन्हे अपवाद ही समझना चाहिये। सिध्दांत तो यह है कि पूर्ण भक्त बनने के लिये मन से नही स्वरूप से भी त्याग करना ही चाहिये। सन्यासी होकर अहर्निश कृष्ण–कीर्तन करते रहना चाहिये। चैतन्यदेव त्याग की मूर्ति थे। वे कहते थे–

संदर्शनं विषयिणामथ योषितां च।
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।।[13]

अर्थात् विषयी लोगों का तथा कामिनियों का दर्शन भी विष–भक्षण से बढ़कर है। बहुत से महापुरूष अपनी अमोघ वाणी के द्वारा संसार का कल्याण किया करते हैं किन्तु श्रीचैतन्यदेव ने तो अपने जीवन को ही प्रेम का साकारस्वरूप बनाकर मनुष्यों के सम्मुख रख दिया। इन्होने किसी नये धर्म की रचना नही की। सन्यास धर्म जो ऋषियों का सनातन धर्म है उसी के शरणापन्न हुये और लोगों को त्याग का यथार्थ मर्म सिखा दिया। इन्होने समय–समय पर जो आठ श्लोक कहें। वैष्णवमण्डली में वे आठ श्लोक 'शिक्षाष्टक' के नाम से प्रसिद्ध है। ''चैतन्यमत कें व्यूह सिद्धांत का आधार प्रेम और लीला है। गोलोक में श्रीकृष्ण की लीला शाश्वत है प्रेम उनकी मूल शक्ति है और वही आनंद का कारण है। यही प्रेम भक्त के चित्त में स्थित होकर महाभाव बन जाता है। यह महाभाव ही राधा है। राधा ही श्रीकृष्ण के सर्वोच्च प्रेम का आलम्बन है। वही उनके प्रेम की आदर्श प्रतिमा है। ''गोपी–कृष्ण–लीला प्रेम का प्रतिफल है।''[14] चैतन्यदेव गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। गौड़ीय सम्प्रदाय को चैतन्य सम्प्रदाय व अचिन्त्य भेदाभेदवाद के नाम से जाना जाता है। चैतन्यदेव ने चौबीस वर्ष नवद्वीप में रहकर गृहस्थाश्रम में और चौबीस वर्ष सन्यास लेकर पुरी आदि तीर्थो में बिताये। सन्यास लेकर छः वर्षो तक आप तीर्थो में भ्रमण करते रहे और अन्त में अठारह वर्षो तक अचल जगन्नाथजी के रूप मे पुरी में ही रहे। बारह वर्षो तक निरन्तर दिव्योन्माद की दशा में रहे।

निष्कर्ष

यदि प्रेमविरह को साकार रूप में देखना हो तो उसके लिए एक ही शब्द है, वह है– श्रीचैतन्यदेव। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि प्रेम और विरह समानार्थी हैं। इस प्रकार चैतन्यदेव का प्रेमोन्मत्त व्यक्तित्व एवं हरिनाम संकीर्तन श्रीकृष्ण भक्तो के लिये अनुकरणीय है। चैतन्यदेव का सम्पूर्ण जीवन प्रेम का साकार रूप है। इनकी यही विशेषता है कि इन्होंने शास्त्रीय सिध्दांतो को महत्व न देकर प्रेम को ही एकमात्र ईश्वर प्राप्ति का साधन माना है तथा नाम संकीर्तन को ही जीवन का सार बताया है। इन्होंने ज्ञान व कर्म का खण्डन नही किया अपितु ज्ञान और कर्म के साथ ही भक्ति का सम्मिश्रण किया। इन्होंने प्रेम को निर्मल भास्कर बताया है जो कि जीवन को आलोकित करता है। प्रेम और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *चैतन्यचन्द्रामृतस्य*
2. *श्रीमद्भगवतगीता, 12–15*
3. *श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक श्लोक सं० 6*
4. *ब्रम्ह–माधव–गौड़ीय मत सत्र*
5. *श्रीमद् भागवत 11–2–40*
6. *चैतन्य स्तवक कल्पवृक्ष*
7. *श्री चैतन्य शिक्षाष्टक श्लोक सं० 7*
8. *श्रीमद्भागवत् 4–29–49.*
9. *श्रीश्री चैतन्य चरितावली पृ०स० 121*
10. *श्रीकृष्ण चैतन्य शिक्षाष्टक श्लोक सं० 3*
11. *श्री चैतन्य चरितामृत (श्रीकृष्णदास कविराज)*
12. *वृहन्नारदीय पुराण*
13. *श्री चैतन्य महाप्रभु*
14. *रमण, रेवती (23) जातीय मनोभूमि की तलाश*